जनवरी की कुछ यादें

अरुण कमल

जनवरी सुनते ही यादों की भीड़ लग जाती है। जनवरी यानी नए साल का पहला महीना। और पहले महीने की पहली तारीख। जो मिलता है वही कहता है, नया साल मुबारक हो। इतनी बधाइयाँ मिलती रहती हैं जनवरी के पूरे महीने कि लगता है सब लोग अपने हैं। बारों तरफ प्रेम है। खुशी है।

फिर जनवरी का मतलब है पूस-माघ का अपना मास। खूब ठण्ड पड़ती है। जब मैं छोटा था तो सामने की दीवार के पास धूप में खड़ा होने दौड़कर जाता था। वहीं पहली धूप आती थी। सारे बच्चे दौड़ते थे। धक्का-मुक्की भी होती थी। इसे धूप लूटना कहते।

रात में सड़क की बत्ती भी धुँधली नज़र आती। दूर से सियारों के बोलने-रोने की आवाज़ें आतीं। माँ कहती, "उन्हें ठण्ड लग रही है। कुत्तों के बच्चे भी कूँ-कूँ करते हैं। उन्हें भी ठण्ड लग रही है।" देर तक आग तापना गप्पें लगाना। जब सब घर चले जाते तो मुहल्ले के कुत्ते वहाँ सिकुड़कर सोते। और बिल्ली मौसी रसोई में चूल्हे के पास सोती। फिर सुबह होती। धूप निकलती। पूरा आसमान चिड़ियों से भर जाता।

जनवरी में फूल भी बहुत खिलते हैं। खूब लाल पॉपी, खूब पंखुड़ियों वाला डेलिया और अजीब-सी खुशबू वाली गुलदाउदी।

इस महीने खाने-पीने की जो चीज़ मुझे सबसे ज़्यादा पसन्द है वो है नया चूड़ा और नया गुड़। दोनों साथ-साथ खाना। दुनिया में इससे अच्छी मिठाई कुछ नहीं। जब मैं छोटा था तब हाफ पैंट की एक जेब में चूड़ा और दूसरे में गुड़ की भेली रखकर खेलता। एक फाँका चूड़ा मुँह में डाला, फिर गुड़ की भेली दाँत से काटी।

अब तो हर जगह जुलाई से नई कक्षाएँ शुरू होती हैं। पहले जनवरी से होती थीं। मुझे याद है, तब जनवरी का मतलब था नई किताबें जिनके कागज़ में बिस्कुट जैसी गन्ध रहती। नई कॉपियाँ। नया बस्ता। नई कक्षा। और कुछ पुराने, कुछ नए दोस्त। सब कुछ नया-नया लगता। इसके अलावा जनवरी में त्यौहार भी आते हैं। मकर संक्रान्ति इसी महीने पता नहीं क्यों हर बार चौदह जनवरी को पड़ती है।

मुझे जनवरी इसलिए भी पसन्द है कि यह अकेला महीना है जो न तो पूरा का पूरा ठण्डा है न पूरा का पूरा गर्म। आधा ठण्डा, आधा गर्म। नए साल का नया महीना। सबको मुबारक!

रुस्तम

मैं प्राइमरी स्कूल में था। हमारे गाँव में स्कूल नहीं था। हम खेतों में से होते हुए दो मील चलकर दूसरे गाँव जाते थे। सुबह-सुबह ही घर से निकल पड़ते थे। मैंने पतले तले वाले कपड़े के जूते पहने होते थे। मोज़ों के बारे में तो अभी हमने सुना भी नहीं था। मैं बिना बाज़ू का एक स्वेटर भी पहने रहता था। उसके ऊपर मेरी माँ एक कपड़ा लपेट देती थी और उसकी गाँठ आगे गले के पास बाँध देती थी। कभी-कभी मेरे पाजामे में घुटनों वाली जगह पर सुराख भी होते थे। पगडण्डियों पर पाला जमा होता था।

उन दिनों मैं यह हिसाब नहीं रखता था। पर सर्दी के उन भयानक दिनों में इकतीस दिन तो जनवरी के ही रहते होंगे। और अब मैं जानता हूँ कि लगभग वही इकतीस दिन सबसे ठण्डे दिन होते होंगे।

हमारा स्कूल शेरशाह सूरी की बनवाई एक उजड़ी सराय में था। सराय में लाल ईंटों के टूटे-फूटे, आधे-गिरे सैंकड़ों कमरे थे। उन्हीं में से दो-तीन कमरों की छत पर खुले में हमारी कक्षा लगती थी। हम टाट पर बैठते थे। शहर से आने वाली हमारी अध्यापिका लकड़ी की कुर्सी पर। उसने खूब सारे गरम कपड़े पहने होते थे। दो-तीन स्वेटर और उनके ऊपर शॉल। बीच-बीच में उठकर वह धड़ाम से जूते समेत अपना पैर हमारी पीठ पर मारती थी। शायद उसी से कुछ गर्मी हमें पहुँचती थी।

शशि सबलोक

सुनदर मुन्दरिए होए,
तेरा कौन विचारा होए,
दुल्ला हट्टी वाला होए,
दुल्ले दी तही व्यायी होए,
सेर शक्कर पाई होए...

शाम होते ही हम बच्चों की टोली निकल पड़ती। सुनदर मुन्दरिए... गाते हम घर-घर जाते। जब तक पाँच-दस पैसे न मिल जाते, हम दरवाज़े के आगे जमे रहते। फिर भी न मिलते तो हुक्के ते हुक्का, ए घर भुक्का कह आगे बढ़ जाते। टोली में शामिल होने के लिए पंजाबी होना या सुनदर मुन्दरिए आना ज़रूरी न था। बस हर बार लय-ताल में होए बोलना होता था।

हाँ, साथ-साथ में सूखी लकड़ियाँ बटोरना बदस्तूर जारी रहता। शाम की कमाई से फुल्ले (पॉपकॉर्न), रेवड़ियाँ और मूँगफली खरीदते। रात को सारा मोहल्ला जमा होता। लोड़ी जलती। फुल्ले, रेवड़ियाँ कुछ मुँह में और कुछ जलती लोड़ी में जाते। सर्दियाँ खैर से गुज़र गईं इसकी खुशियाँ मनाते। देर तक आग तापते रहते। गाने-बजाने होते। एक लोड़ी पर पापा का गाया वो गाना कैसे भूल सकती हूँ:

लोड़ी वाली रात लोकी बालदे नि लोड़ियाँ,
साडी कादी लोड़ी अक्खाँ सजना ने मोड़ियाँ...

अब जब न हम बच्चे रहे, न वो दोस्त, न वो शहर रहा, न माँ-पिता, भाई-बहन आसपास! 13 जनवरी तो आती है पर साथ में वैसी लोड़ी नहीं लाती।

किशोर पँवार

जनवरी यानी आम में बौर आने का मौसम। इन पेड़ों पर कोयल कूकने का मौसम। चारों ओर बसन्त की छटा छा जाती है। बसन्त पंचमी का भी यही महीना है और मकर संक्रान्ति का भी। गुड़, तिल, पतंग और खिचड़ी का भी।

खेत सरसों के पीले फूलों से पीले पड़ जाते हैं। गेहूँ, चना भी फूलकर फलने की तैयारी में हैं। इस महीने ठण्डे देशों (अमरीका, कनाडा, फ्रांस...) में नज़ारा कुछ और ही होता है। वहाँ भारी बर्फबारी के चलते वनस्पतियाँ (चीड़, देवदार, क्रिसमस ट्री...) अतिशीतलन के खतरे से जूझती हैं। उनकी पत्तियों व टहनियों पर भारी मात्रा में बर्फ जमा हो जाती है। वनस्पतियों के कन्द और कलियाँ सुप्त अवस्था में चली जाती हैं। हमारे देश के जम्मू-कशमीर जैसे ठण्डे इलाकों में सेब, केसर (कन्द) के साथ भी कुछ-कुछ ऐसा ही होता है।

बेहद ठण्डे देशों की तुलना में भारत, अफ्रीका जैसे उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में नज़ारा कुछ और ही होता है। वहाँ आकाश से बर्फबारी हो रही होती है और यहाँ पेड़ों से पत्तीबारी। पत्तियाँ पककर, पीली पड़कर टूट-टूटकर हवा के साथ इधर-उधर उड़ने लगती हैं। पतझड़ अपने शबाब पर होता है। ढाक (पलाश) के मशहूर तीन पात नदारद होते हैं। पत्तियों की जगह कहीं-कहीं मरी-मरी सी शाखाओं पर गहरी काली-हरी घुण्डियाँ लगी हुई होती हैं, जो कुछ ही दिनों में फूटकर आग बरसाने की तैयारी में हैं। जंगलों में कुसुम के पेड़ों पर लाल, चमकीली, नई-नवेली, कोमल, नाजुक पत्तियों की छटा छाई होती है। पीपल और नीम पर भी नई ताम्बई पत्तियों ने जगह पा ली होती है। ठण्ड को अलविदा कहने का यह उनका तरीका है।

प्रवासी पक्षियों ने भी इन दिनों झील, झरनों और नदियों में अपने ढेरे डाल लिए हैं। पोचार्ड, लेपार्ड, टील, शावलर, ब्राह्मणी बत्तख, सुरखाब...